कालिदास की कहानी

जूलियन एल्फ़र द्वारा लिखित

कई सदियों पहले, भारत के वर्तमान मध्यप्रदेश राज्य में स्थित, उज्जैन के निकट एक गाँव के बाहरी हिस्से में एक अनाथ बालक रहता था जिसका नाम था, दास। किसी दयालु वृद्ध चरवाहे ने बचपन से ही उसका पालन-पोषण किया था, अतः बालक ने बकरियों के तौर-तरीक़े सीख लिए थे और उसने झुण्ड की देखभाल का काम भी सँभाल लिया था। बड़ा होकर दास अत्यन्त रूपवान दिखने लगा; उसके भोले-भाले स्वभाव और बोल-चाल के कारण गाँव के लोग उसे बहुत पसन्द करते थे। वह बड़े प्रेम से बकरियों की देखभाल करता और जब वह गाता तो उसकी आवाज़ में एक मिठास होती, जो उसके निश्छल मन को स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित करती थी और इसी कारण सभी गाँववाले उसकी ओर आकृष्ट होते।

उस समय, उस राज्य के राजा थे, राजा विक्रमादित्य। उनकी एकलौती पुत्री, विद्योत्तमा अपनी असाधारण सुन्दरता और प्रखर बुद्धि के लिए प्रसिद्ध थी। अपने अभिमान और घमण्ड में उसने यह घोषणा की थी कि वह ऐसे किसी भी व्यक्ति से विवाह कभी नहीं करेगी जो बुद्धिमत्ता में उसकी बराबरी का न हो।

राजा ने उसे बार-बार समझाया, विनती की कि वह अपने बचपन के साथी, तेजस्वी विद्वान और कुलीन महामन्त्री, वररुचि से विवाह करे। वररुचि राजकुमारी पर जान छिड़कता था किन्तु जितनी बार भी राजा आग्रह करते, राजकुमारी अस्वीकार कर देती।

राजकुमारी के हठ करने पर, अन्ततः राजा विक्रमादित्य एक सुयोग्य वर ढूँढ़ने की योजना पर राज़ी हो गए। उन्होंने राजकुमारी और सम्भावित वर के बीच अनेक सार्वजनिक शास्त्रार्थों का आयोजन किया। इनमें से हरेक शास्त्रार्थ में राजकुमारी विजयी होती और निराश प्रत्याशी अपना सिर झुकाए वहाँ से चले जाते।

ठुकरा दिए जाने की पीड़ा वररुचि के लिए असहनीय होने लगी थी, उसके पास अपने इस दर्द की कोई दवा न थी। अतः एक अमावस्या की रात अपना कुछ सामान लेकर वह चुपके-से महल से निकल गया। वह कई सप्ताहों तक चलता रहा, अपने इस गहरे विषाद को भूलने के लिए, जो उसे अन्दर ही अन्दर खाए जा रहा था। दिशाहीन-सा वह इधर-उधर भटकता रहता, और जहाँ थक जाता वहीं सो जाता।

एक दिन सुबह तड़के, सिर के बिलकुल ऊपर विचित्र-सी, घिसने जैसी कर्कश आवाज़ से उसकी नींद खुल गई। उसने ऊपर देखा तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ—एक युवक पेड़ की शाखा के दोनों ओर पैर रखकर बैठा है और बड़ी मस्ती से शाखा को काट रहा है। और तो और, वह शाखा को बिलकुल तने पर से ही काट रहा था। निश्चित ही वह खुद नीचे गिरकर अपनी गर्दन तुड़वाने वाला था।

"अरे मूर्ख!" वररुचि चिल्लाया, "यह तुम क्या कर रहे हो? मरना है क्या?"

अपने काम में बाधा पड़ने से हैरान होकर युवक ने सिर उठाकर देखा और मुस्कराया। "यह बकरियों के लिए है!" ख़तरे से अनजान, उसने सरलता से कह दिया।

"नहीं! मेरा मतलब है . . ." वररुचि ने कहना चाहा, पर बहुत देर हो चुकी थी। आरी अपना काम पूरा कर चुकी थी—शाखा टूट गई और चरवाहा ज़मीन पर गिर पड़ा। अगले ही क्षण वह उछलकर अपने पैरों पर खड़ा हो गया और उस शाखा को एक पुरस्कार की तरह अपने हाथ में उठाकर हिलाते हुए हँसने लगा।

"बकरियों के लिए!" उसने पहले जैसी ही ज़िन्दादिली से फिर कहा।

वररुचि बड़े आश्चर्य से उसे देखता रहा। वह तो उस व्यक्ति को उसकी मूर्खता के लिए डाँटने ही वाला था, पर कुछ तो बात थी, उसकी बड़ी-बड़ी चमकती आँखों में—एक विनोदप्रियता और सूक्ष्म भावुकता जिसने वररुचि को विस्मित कर दिया था।

पलक झपकते ही, वररुचि के मन में एक योजना आई जो इतनी बढ़िया थी कि वह खिलखिलाकर हँसने लगा और उस व्यक्ति के कन्धे को थपथपाने लगा।

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम दास है, श्रीमान्।"

"बहुत बढ़िया, दास! तुम्हारे राजा ने तुम्हें दरबार में बुलाया है।"

चरवाहे ने कुछ चिन्तित होकर अपनी छाती खुजाई।

"पर मेरी बकरियाँ . . ., " उसने दुःखी स्वर में कहा।

वररुचि ने उसकी बात पर ध्यान न देते हुए अपना हाथ हिलाया और दास को सड़क की ओर धकेल दिया।

“जैसा मैं कहूँ, ठीक वैसा ही करो। यह तुम्हारे और तुम्हारी बकरियों के लिए अच्छा रहेगा।”

तीन दिनों में, दूर-दूर से जनता राजमहल के दरबार में इकट्ठा होना शुरू हो गई क्योंकि वररुचि ने पूरे राज्य में यह घोषणा करवा दी थी कि राजकुमारी को चुनौती देने के लिए एक अनजान और अप्रतिम विद्वान का अचानक आगमन हुआ है। किसी को भी उसके जन्म के बारे में कोई जानकारी न थी, हालाँकि कुछ कहानियाँ फैली थीं कि यह विद्वान बड़ी ही विलक्षण प्रतिभा का धनी है; कि वह तथाकथित ज्ञान से विरक्त हो चुका है; और यह कि हिमालय में रहकर उसने गहन मौन की शक्ति को साध लिया है। अतः वह केवल पूर्ण व अखण्डित रूप से मौन रहकर ही राजकुमारी से शास्त्रार्थ करेगा। बहुत ज़रूरी होने पर ही सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।

दास के प्रवेश करते ही महल में सन्नाटा-सा छा गया। राजकुमारी दरबार के दूसरे कोने में खड़ी होकर, पैनी दृष्टि से अपने प्रतिस्पर्धी को जाँच-परख रही थी। वररुचि ने दास को एक राजा के लिबास में सजाया था। चरवाहे दास ने खूब कशीदाकारी किया हुआ बेल-बूटेदार अँगरखा पहना हुआ था जो उसके टखनों तक आ रहा था, उसने रत्नजड़ित जूते और सबसे उत्कृष्ट कोटि के महीन रेशम से बनी बैंगनी रंग की पगड़ी पहनी हुई थी। उसे निर्देश दिया गया था कि चाहे कुछ भी हो, उसे शास्त्रार्थ के बीच एक भी शब्द नहीं बोलना है और बिना परिणाम की चिन्ता किए जो भी उसके मन में आए वैसे संकेत व हावभाव व्यक्त करते रहना है। दिन के अन्त में उसे राजसी सम्मान मिलेगा और वे उसे इतना अच्छा भोजन कराएँगे कि उसने कभी सोचा भी न होगा। तो, दास वहाँ, दरबार के बीच खड़ा था, निर्विकार उत्सुकता व कौतूहल के साथ, सहजता से और जो घटने वाला है उसके लिए तैयार।

राजकुमारी उसके निकट आई; अपनी चतुर, पैनी नज़र से उसका सूक्ष्म निरीक्षण किया। फिर बड़ी देर तक रुकने के बाद, उसने एक उँगली उठाई। प्रत्युत्तर में, दास ने दो उँगलियाँ उठा दीं। ऐसा लगा मानो राजकुमारी को इसी उत्तर की अपेक्षा थी, क्योंकि उसने फिर तुरन्त ही तीन उँगलियाँ उठाकर उत्तर दिया। दास विचार करने के लिए रुका, उसने एक हाथ अपने मुँह पर रखा और गहरी साँस ली। कन्धे उचकाते हुए उसने चार उँगलियाँ उठाईं। इसी के साथ, अपनी विजय को निश्चित मानकर राजकुमारी ने विजयी मुद्रा में अपने दाहिने हाथ की सारी उँगलियाँ उठाईं। किन्तु दास ने हाथों को मोड़कर अपने सीने पर रखा और क्रोधावेश में अपना सिर हिलाया। राजकुमारी की आँखों में आँखें डालकर देखते हुए उसने अचानक अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी को अपने बाँए हाथ की हथेली पर रखा और अपनी बाँहों को उपेक्षा से हिलाया। राजकुमारी पीली पड़ गई व पराजित दिखाई दी। फिर बहुत देर के बाद, उसने कोमल स्वर में कहा :

“मैं अपनी हार स्वीकार करती हूँ। मैं जितने भी विद्वानों को जानती हूँ, उन सब में आप सर्वश्रेष्ठ हैं!”

वहाँ एकत्रित लोग खुशी से जयजयकार करने लगे। राजा विक्रमादित्य राहतभरी खुशी के आँसू पोंछने लगे और वररुचि एक गहरे व व्यंग्यपूर्ण सन्तोष से मुस्कराया।

राजकुमारी के मन में शास्त्रार्थ के संकेतों के अर्थ इस प्रकार प्रकट हुए थे : एक उँगली से उसने इस बात को दर्शाया था कि सत्य एक है और अविभाज्य है। दास के दो उँगलियाँ दिखाने का अर्थ उसने यह समझा कि वे महापुरुष उससे द्वैत के विषय में स्पष्टीकरण माँग रहे हैं, जिसके उत्तर में उसने तीन गुणों का उद्घोष किया था। इसके उत्तर में दास ने दृढ़ विश्वास के साथ, चार वेदों के शाश्वत ज्ञान को दर्शाते हुए चार उँगलियाँ उठाकर उत्तर दिया। खुद को बधाई देने का भाव दर्शाते हुए राजकुमारी ने प्रत्युत्तर में अपना पूरा हाथ ऊपर उठा दिया, उन पंचकोषों को सूचित करने के लिए जो आत्मा को ढक देते हैं। किन्तु तभी पूर्ण आत्मविश्वास के साथ, इन ज्ञानी महापुरुष ने अपनी मुट्ठी को अपनी हथेली पर रखा और सबको यह बताया कि जब राजकुमारी का मन व अहंकार अन्ततः अपनी हार स्वीकार कर लेंगे, केवल तभी वह समर्पण करेगी और उसे सत्य का ज्ञान होगा। उस क्षण, राजकुमारी को उनकी दृष्टि इतनी विशुद्ध और मर्मभेदी लगी कि उसका हृदय परिवर्तित हो गया। वह इस श्रेष्ठ आध्यात्मिक विजय को अस्वीकार न कर सकी।

दास की दृष्टि से देखें तो, वह केवल नियत योजना के अनुसार चलते हुए बड़ी आतुरता से आगामी भोज की राह देख रहा था। इसलिए जब राजकुमारी ने एक उँगली उठाई तो दास ने सोचा कि वह शास्त्रार्थ के पुरस्कार में केवल एक रोटी देने की बात कर रही है जो उसे बेहद पसन्द थी!. . . यह पुरस्कार दास को कुछ कम लगा, आख़िर उसने इसके लिए इतने कष्ट जो उठाए थे। और उसे इस सौदे में थोड़ा-बहुत मोल-भाव करने में कोई एतराज़ नहीं था, क्योंकि वह थक गया था और उसे बहुत भूख भी लगी थी; और फिर, उससे जो कहा गया था वह सब कुछ भी तो उसने किया था। उसने कहा वह दो ले सकता है। खेल आगे बढ़ा . . . किन्तु जब राजकुमारी ने पाँच रोटियों का प्रस्ताव सामने रखा. . . ओह, यह तो बिलकुल असभ्य व्यवहार व लालच होगा और जो ऐसे पेटू की तरह खाता है उसे तो डाँट-फटकारकर वहाँ से निकाल देना चाहिए।

विवाह समारोह इतनी धूमधाम से हुआ कि राजधानी के लोगों ने इससे पहले ऐसा समारोह कभी नहीं देखा था। परन्तु, राजकुमारी विद्योत्तमा को इस छल का पता लगने में अधिक समय नहीं लगा। अपने दूल्हे के साथ अकेले रहने पर उसने देखा कि यह विद्वान महापुरुष तो अपना समय, महल के उद्यानों में उछल-कूद करते, बच्चों की तरह पेड़ पर झूलते और अपनी ही मस्ती में गाते हुए व्यतीत कर रहा है। जब भी राजकुमारी उसके साथ कोई विचारशील वार्तालाप करने का प्रयत्न करती, तो उसके प्रत्युत्तर में उसे सम्भ्रमयुक्त हास्य ही मिलता।

उसे यह जानकर बड़ा कष्ट हो रहा था कि वररुचि ने उसके प्रेम की उपेक्षा का प्रतिशोध लेने हेतु एक मूर्ख को छलपूर्वक उसके साथ बाँध दिया है। जब वह इस रूपवान युवक को बड़े प्रेम व उत्साह से बकरियों के साथ बिताए अपने जीवन की बातें करते हुए सुनती तो राजकुमारी को उसके प्रति सच्चा स्नेह महसूस तो होता, परन्तु यह भी सच था कि उसके अभिमान को भी बहुत गहरी ठेस पहुँची थी। जब उसका क्रोध उसकी सहनशक्ति की सीमा से बाहर हो गया तो उसने दास के पास जाकर बिना सोचे-समझे, वररुचि की योजना के बारे में उसे बता दिया कि कैसे वररुचि ने दास के साथ उसका विवाह करवाकर अपना बदला लिया है। वह जो कुछ भी कह रही थी, दास उसे समझने का प्रयास कर रहा था। दास को इस दशा में देखकर राजकुमारी के दिल में पछतावे की पीड़ा हो रही थी। दास का चेहरा उतर गया और कन्धे झुक गए। अगली सुबह दास वहाँ से जा चुका था।

रात को ही दास वहाँ से चला गया था। राजकुमारी के कटु शब्द उसके कानों में गूँज रहे थे। कुछ ही घण्टों पहले चरवाहा दास एक रोमांचक, अनोखे व मस्तीभरे साहसिक कार्य के लिए गया था। किन्तु अब, उसे पता चला कि उसे भटकाकर बहुत बेरहमी से मूर्ख बनाया गया था। इस नई जगह पर वह एक अनजान व्यक्ति था जिस पर तरस भी खाया गया और उसका मज़ाक़ भी बनाया गया। मासूम और नेकदिल दास समझ ही नहीं पा रहा था कि कोई इतना स्वार्थी कैसे हो सकता है।

सवेरा होने लगा था, धुँधले प्रकाश में पेड़ों की छाया पड़ रही थी, कुछ समय से हो रही हलकी बूँदाबूँदी अब तेज़ होने लगी थी। थोड़ी दूरी पर आगे मैदान में उसे देवी का एक मन्दिर दिखा—एकान्त में दृढ़ता से खड़ा जो उसे अपनी ओर बुला रहा था। शायद देवी माँ को ही उस पर दया आ जाए। मन्दिर के उस शीतल गर्भगृह में वेदी पर घी का एक दीपक जगमगा रहा था। सब कुछ स्थिर व प्रशान्त था। उस मौन ने दास को अपने में समेट लिया, कुछ पल के लिए वह उस मौन को सुनते हुए वहीं खड़ा रहा; फिर उसने आह भरी, भूमि पर दण्डवत किया और फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी व्याकुलता और अन्तर की हलचल के कारण उसके आर्त हृदय से देवी के समक्ष एक प्रार्थना निकली : “हे माँ! कौन हूँ मैं?”

बात यह थी कि उसने जहाँ शरण ली थी वह देवी काली का मन्दिर था। अपने नियमानुसार देवी माँ ब्रह्मवेला में बाहर टहल रही थीं, आस-पास कोई नहीं था। जब वे अपने निवास-स्थान पर वापस आईं और उन्होंने द्वार खोलने का प्रयत्न किया तो देखा कि वह अन्दर से बन्द है।

“कौन है अन्दर?” उन्होंने पूछा।

अन्दर से पैरों के घसीटने जैसी और सिसकने व धीमे स्वर में बोलने की आवाज़ आई, फिर सब कुछ शान्त हो गया।

“कौन है?” उन्होंने दोबारा पूछा। सब कुछ शान्त ही रहा। उन्होंने तीन बार दरवाज़ा खटखटाया। सुबह की निस्तब्धता में उनकी शक्तिपूरित वाणी गूँज उठी, उन्होंने कड़े स्वर में कहा, “द्वार खोलो!”

इस बार का उत्तर बिलकुल स्पष्ट था।

“चली जाओ! कृपा करके मुझे अकेला छोड़ दो!”

श्रीकाली माँ ने उस आवाज़ को पहचान लिया। उन्होंने वह पहले भी सुनी थी। डर और भ्रान्ति के पीछे छिपी उस भक्त की दृढ़ भक्ति और उसकी विशुद्ध तीव्र उत्कण्ठा को वे समझ गईं। इस भक्त ने अपने पूर्वजन्मों में गहन भक्तिभाव से पूजा और कई वर्षों तक सेवा की थी। भगवती जानती थीं कि उनकी यह भेंट उसके भाग्य और महान पुण्यों का फल थी।

“आह!” उन्होंने मन्द स्वर में कहा, “तो तुम आ गए।”

द्वार की ओर झुकते हुए उन्होंने कहा, “मुझे अपना चेहरा तो दिखाओ।”

उन्हें द्वार के पीछे से कुछ हलचल सुनाई दे रही थी, उन्होंने सौम्यता से कहा, “काली को अपनी जीभ दिखाओ।”

मन्दिर के अन्दर, दास को लगा कि वह उनके आदेश का पालन करने के लिए विवश है। बड़ी सावधानी से उसने द्वार को किंचित् खोला और उस खुली जगह में से अपनी जिह्वा को बाहर निकाला। अत्यन्त प्रेम व करुणा से काली माँ ने अपनी उँगली से उसकी जिह्वा पर एक मन्त्र लिखा।

उस क्षण दास को ऐसा महसूस हुआ जैसे उन्होंने उसके मुख में जलता हुआ कोयला रख दिया हो। वह श्रद्धायुक्त भय से स्तम्भित हो गया। उसके अन्तर में असंख्य स्मृतियाँ स्वप्न की तरह प्रस्फुटित होने लगीं : उसके अतीत में अकल्पनीय रूप से विशाल यात्रा-पथ था, उसे अपने पूर्वजन्मों की यात्रा का स्मरण हो आया। उसने दरिद्रता व सम्पन्नता का, प्रसिद्धि व गुमनामी का जीवन व्यतीत किया था; फिर भी हर जन्म में उसने देवी की ही शरण ली थी और शुद्ध हृदय से उनकी सेवा की थी। जन्म-जन्मान्तरों की प्रचण्ड तपस्या उसके मन की आँखों के सामने एक क्षण में दिख गई।

वह पसीना-पसीना हो उठा और उस प्रकाश को प्रवाहित होते देख रहा था जो श्वास से भी तेज़ गति से गतिमान होते हुए उसके मुख से उसके कण्ठ में, उसके हृदय में और उसके उदरक्षेत्र में संचरित हो रहा था। उसके अन्दर एक अदम्य प्रेरणा जाग्रत हुई—कुछ कहने की या फिर गाने की, परन्तु क्या कहने या क्या गाने की, वह नहीं जानता था। वह केवल इतना ही जानता था कि यदि उसने आरम्भ कर दिया तो उसका कोई अन्त न होगा। जाज्वल्यमान स्पष्टता से उसने उस दिव्य प्रेरणा को देखा जो ध्वनियों के रूप में उसके अन्तर से प्रसरित हो रही थी—संस्कृत के अक्षर, शब्द—साथ ही वे

छवियाँ जो उस तेजपुंज में से स्फुरित होकर बड़े उल्लास से नृत्य करते हुए प्रकट हो रही थीं। उसने देखा कि जीवन को इन्हीं से शक्ति मिलती है। वे देवी माँ ही थीं जो उसके अन्तर में गा रही थीं। यह अतुलनीय था।

उसने आँसू पोछने के लिए अपनी आँखें खोलीं तो देखा कि काली माँ उसके सामने खड़ी हैं। वे उसी दिव्य तेजस्विता के साथ दमक रही थीं और उनका मुखमण्डल वात्सल्य की प्रभा से चमक रहा था। उनकी हँसी सब ओर गूँज रही थी। गहरी साँस लेते हुए उन्होंने कहा, "आह, कालीदास!"

और यही हुआ, एक अनपढ़ परन्तु शुद्ध हृदय वाले, युवा चरवाहे को देवी माँ की दिव्य कृपा से दीक्षा प्राप्त हुई। और आने वाले वर्षों में वह एकाग्रचित्तता के साथ व बढ़ते कौतूहल के साथ मन्त्र को अन्तर में प्रतिध्वनित होते हुए सुनता रहता; मन्त्र उसके अन्दर की गहराई में पैठता गया। रात हो या दिन, वह एकाकी हो या लोगों के संग, उसका मन उस सूक्ष्म स्पन्दन में डूबा रहता। उसके अन्दर मौन रूप से जो बसा हुआ था, उसे अब स्वर मिल गया। और इसी स्वर ने कालिदास को एक कवि, नाटककार, मेधावी राजदरबारी और भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा सर्वकालिक भावप्रवण कवि बना दिया—और उसे 'महाकवि' की उपाधि दिलाई।

© २०२२ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।